(R.50)

P1 R.M.M. Law college – Saharsa.
Manvendra Mandal, part time Lecturer | Drafting and pleading Part – II

संशोधन की अस्वीकृति (Refusal of Amendment)

अनेकों न्याय निर्णय के दौरान हुए अनुभव तथा अवलोकन के पश्चात यह अभिनिर्धारित किया गया कि निम्नांकित अपवादात्मक परिस्थितियों में न्यायालय को संशोधन की अनुमति नहीं प्रदान करना चाहिए –

① जबकि प्रस्तावित संशोधन अनावश्यक हो
② जबकि प्रस्तावित संशोधन से विपक्षी को ऐसा नुकसान हो जिसकी क्षतिपूर्ति पैसा देकर नहीं हो सकती है।
③ जबकि प्रस्तावित संशोधन का आवेदन सद्भावना से न किया गया हो
④ जबकि प्रस्तावित संशोधन केस की प्रकृति को ही बदल दे, तथा
⑤ जबकि प्रस्तावित संशोधन के आवेदन में अत्यन्त देरी की गयी हो।

(1) जबकि संशोधन अनावश्यक हो –

ऐसे सभी संशोधनों की अनुमति प्रदान नहीं की जानी चाहिए जो पक्षकारों के बीच वास्तविक विवादग्रस्त प्रश्नों को अभिनिश्चित करने के लिए आवश्यक न हो। ऐसी अनावश्यकता निम्नलिखित परिस्थितियों में पैदा हो सकती है –

(i) जबकि संशोधन केवल टेक्नीकल हो, अथवा
(ii) जबकि संशोधन व्यर्थ एवं निःसार हो।

साउथ इण्डिया कारपोरेशन बनाम एस० टी० कारपोरेशन का केस महत्वपूर्ण है। इस केस में एक कम्पनी द्वारा लाये गये वाद में प्रतिवादी ने अत्यन्त देर से जबकि गवाही समाप्त हो चुकी थी और केवल सुनने को बाकी रह गये थे, अपने वाद पत्र में इस कथन को अभिकथित करने के लिए संशोधन के लिए आवेदन किया कि वादपत्र समुचित रूप से दायर नहीं किया गया था। क्योंकि वादपत्र में आदेश 6, नियम 1 सी० पी० सी० के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया था। उक्त संशोधन केवल टेक्नीकल था, जिसकी अनुमति प्रदान नहीं की गयी।

(2) जबकि संशोधन से विपक्षी को नुकसान हो –

दूसरी अपवादात्मक परिस्थिति, जिनमें संशोधन को अस्वीकृत कर देना चाहिए, जबकि प्रस्तावित संशोधन द्वारा विपक्षी को ऐसा नुकसान होता हो जिसकी क्षतिपूर्ति पैसा देकर नहीं हो सकती हो। क्योंकि यदि पैसा

Scanned with CamScanner

12 संशोधन की अस्वीकृति (Refusal of Amendment)

देकर विपक्षी की क्षतिपूर्ति की जा सकती है तो इसमें कोई अन्याय नहीं; किन्तु इस प्रकार की क्षति निम्न दो अवस्थाओं में हो सकती है—

(i) जबकि प्रस्तावित संशोधन प्रभावस्वरूप प्रतिवादी से ऐसे कानूनी अधिकार को छीन ले जो उसे समय के व्यतीत होने से प्राप्त हुआ है— इस बात को वेल्डन बनाम नील के केस में स्पष्ट किया गया है। गंगा बाई बनाम विजय कुमार के केस में संशोधन के आवेदन को इसी आधार पर अस्वीकृत कर दिया था। किन्तु सुप्रीम कोर्ट ने गिरधारी दास बनाम पिपलई के केस में इंगित किया है कि यदि ऐसे मामले में विपक्षी पक्षकार को हानि नहीं होती और वादी द्वारा मांगा गया अनुतोष परिसीमन अवधि के भीतर है तो अभिवचन को संशोधन की अनुमति दे दी जायगी।

(ii) जबकि प्रस्तावित संशोधन से वादी का दावा पूर्णतया अविहित (wholly displace) हो जायगा— स्वीवार्ड बनाम एन डब्ल्यू ट्रामवे कं० का केस इस बात का अच्छा उदाहरण है। इस मामले में एक वादी ने ट्रामवे कंपनी पर उसकी असावधानी के लिए क्षतिपूर्ति के लिए वाद चलाया। कम्पनी ने अपना बचाव केवल एक आधार पर किया कि कम्पनी ने कोई असावधानी नहीं की। छः माह पश्चात् कम्पनी ने संशोधन की अनुमति के लिए आवेदन किया। इस प्रस्तावित संशोधन द्वारा कम्पनी यह दलील प्रस्तुत करना चाहती थी कि सड़कों को ठीक बनाये रखने का दायित्व एक स्थानीय प्राधिकारी को हस्तान्तरित कर दिया गया था, अतः वह स्थानीय प्राधिकारी ही उत्तरदायी था, न कि प्रतिवादी कम्पनी। किन्तु छः माह के समय के व्यपगत के कारण अब उस प्राधिकारी के विरुद्ध मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। इन परिस्थितियों में कम्पनी को प्रस्तावित संशोधन की अनुमति देने से कम्पनी के विरुद्ध वादी का वाद असफल हो ही जाता और साथ ही वादी उस प्राधिकारी के विरुद्ध भी मुकदमा नहीं चला सकता था और उसका दावा बिल्कुल wholly

Scanned with CamScanner

P-3 संशोधन की अस्वीकृति (Refusal of amendment)

displace हो जाता। एतएव संशोधन की अनुमति प्रदान नहीं की गयी। हीरालाल बनाम कल्याणमल के वाद में भी उपरोक्त तथ्यों के आधार पर उच्चतम न्यायालय ने संशोधन आवेदन को अस्वीकार कर दिया था।

(3) जबकि प्रस्तावित संशोधन का आवेदन सद्भावना से न किया गया हो — अनेक वादों में यह धारण किया जा चुका है कि यदि प्रस्तावित संशोधन का आवेदन सद्भावना पूर्वक नहीं किया गया है तो उसकी अनुमति नहीं दी जायगी। संशोधन के लिए कोई आवेदन सद्भावनापूर्वक (Bona fide) किया गया है या असद्भावनापूर्वक (Mala fide) इस सम्बन्ध में कोई कठोर एवं निश्चित नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता और प्रत्येक केस की परिस्थितियों के अनुसार ही इस बात को तय किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, जहाँ कोई पक्षकार किन्हीं तथ्यों से भली-भाँति परिचित था किन्तु उसने जान बूझकर परीक्षण (trial) शुरू होने के पूर्व तक उन्हें छिपाये रखा और बाद में उन्हीं के आधार पर संशोधन का आवेदन किया, वहाँ सुप्रीम कोर्ट ने धारण किया कि संशोधन का आवेदन सद्भावनापूर्वक नहीं किया गया था।

इसी प्रकार एक कम्पनी द्वारा चलाये गये एक वाद में प्रतिवादी ने बड़ी देर से, जबकि गवाही समाप्त हो चुकी थी और केवल बहस (Argument) की सुनवाई बाकी बची थी ऐसी स्थिति में लिखित कथन के संशोधन के लिए आवेदन किया, जिसके द्वारा वह यह अभिकथन जोड़ना चाहता था कि कम्पनी द्वारा वाद समुचित रूप से दायर नहीं किया गया था, क्योंकि वाद-पत्र में सी० पी० सी० के आदेश 29 नियम 1 के उपबन्धों का पालन नहीं किया था। न्यायालय ने धारण किया कि प्रतिवादी द्वारा प्रस्तावित संशोधन असद्भावनापूर्ण (Mala fide) था।

(4) जबकि प्रस्तावित संशोधन केस की प्रकृति को ही बदल दे → न्यायालय द्वारा सामान्यतया ऐसे संशोधन की अनुमति नहीं प्रदान की जानी चाहिए जहाँ पर प्रस्तावित संशोधन वाद को सर्वथा एक भिन्न एवं असंगत स्वरूप को वाद में परिणत कर दे। उदाहरणार्थ भेंट (Gift) पर आधारित हक को संशोधन द्वारा उत्तराधिकार (Inheritance) पर आधारित हक को परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

Scanned with CamScanner

4 संशोधन की अस्वीकृति (Refusal of amendment)

बेदखली (ejectment) के लिए हक के विभाजन (Partition) के लिए हक में भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में उड़ीसा उच्च न्यायालय द्वारा निर्णित नकुल बनाम दामोदर का मामला उल्लेखनीय है।

(5) जबकि प्रस्तावित संशोधन में आवेदन में अत्यधिक देरी की गई हो— केवल देरी के आधार पर ही संशोधन अस्वीकृत नहीं किया जा सकता, किन्तु यदि आवेदन इतनी देर से किया गया है कि उसकी अनुमति प्रदान करने से विपक्षी पक्षकार के साथ अन्याय होगा या उसे हानी होगी तो उसे स्वीकार नहीं करना चाहिए। अत्यधिक देरी mala-fide की सूचक हो सकती है विशेषकर तब जबकि उसका कारण भी स्पष्ट नहीं किया गया हो।

सुप्रीम कोर्ट ने एम०सिंह बनाम पी०सिंह के वाद में देरी के कारण संशोधन के आवेदन को अस्वीकृत करते हुए कहा है— "यह केस 24 वर्ष से अधिक पुराना है और हम ऐसा नहीं सोचते कि अब हम इस समय पक्षकारों को एक नया अभिकथन खड़ा करने की अनुमति देकर तथा मामले को नया जीवन प्रदान करके एक न्यायोचित कार्य करेंगे।"

अतः सामान्यतया देरी से किये गये आवेदनों में संशोधन की अनुमति केवल अपवाद स्वरूप ही देनी चाहिए जहाँ कि आवेदन कर्ता Reasonable diligence से नये तथ्यों को पहले नहीं खोज सकता था। यदि कोई पक्षकार संशोधन के लिए बार-बार आवेदन करता है तो उन्हें स्वीकार करने में भी न्यायालय ने संकोच दिखाया है, क्योंकि इससे विवाद के निस्तारण होने में विलम्ब होता है। इसलिए पक्षकार एवं उनके अधिवक्ता को काफी सोच-समझकर आवेदन दायर करना चाहिए ताकि बार-बार ऐसी नौबत नहीं आये ताकि मुकदमा का सुलभ ढंग से निष्पादन हो सके।

Scanned with CamScanner